Golden Research Thoughts
ISSN 2231-5063
Impact Factor : 3.4052(UIF)
Volume-4 | Issue-8 | Feb-2015
Available online at www.aygrt.isrj.org

GRT

रस सिध्दान्त : एक विवेचन

दत्तात्रय नानासाहेब फुके

सहायक प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, राजर्षी शाहू कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय पाथ्री ता. फुलंब्री जि. औरंगाबाद.

सारांश:- रस की परिभाषा, रस का विकास, रस सामग्री, रस का स्वरुप एवं रस के भेद आदि से रस सिध्दान्त का विवेचन किया गया है। रस सिध्दान्त भारतीय काव्यशास्त्र की महान उपलब्धि है। रस सिध्दान्त भारतीय काव्यशास्त्र का मेरुदण्ड है साथ-ही-साथ एक महत्तम उपलब्धि भी है। रस सिध्दान्त ने भारतीय चिंतको के मानव मन तथा सौदर्य विषयक धारणाओं का गहन अनुशीलन का परिचय इस सिध्दान्त के माध्यम से दिया है। रस सिध्दान्त एक ऐसा मौलिकतायुक्त सिध्दान्त है, जो सांस्कृतिक और मानवीय भूमिका पर आधारित होने साथ व्यापक, सार्वभौम और सार्वकालीन है। इस सिध्दान्त के द्वारा साहित्य की सभी विधाओं का समान मूल्यांकन करना सम्भव है। साथ ही इसमें मानवीय और सांस्कृतिक, वैयक्तिक और सामाजिक, भौतिकतावादी और आध्यात्मिक तथा नीतिवादी और आनंदवादी मूल्यों का अद्‍भूत समायोजन भी है। रस सिध्दान्त भारतीय काव्यशास्त्र का सार और प्राणतत्त्व है। यह सिध्दान्त भारतीय काव्यशास्त्र का अत्यंत प्राचीन एवं मूल्यवान सिध्दान्त है। वर्तमान समय की आधुनिक कविता के संदर्भ में भी रस सिध्दान्त की उपयोगिता और महत्ता हमारे सामने आती है।

कुंजी शब्द (Key Word):- रस, रस सिध्दान्त, काव्यशास्त्र

प्रस्तावना:-

"समस्त भारतीय विद्याओं के उद्‍गम स्रोत वेद हैं। कवि तथा काव्य शब्दों के अनेक अर्थों तथा अनेक रुपों में प्रयोग वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते है। अतएव भारतीय काव्यशास्त्र का उद्‍गम भी वेदों से माना जाता है, जिसकी रचना का समय ज्ञात नहीं है।"[१] भारतीय वाड्:मय में 'रस' शब्द का प्रयोग, विविध अर्थो में प्राप्त होता है। इसमें पदार्थो का रस, भक्ति रस और साहित्य का रस। यह प्रश्न स्वाभाविक रुप से सामने आता है कि 'रस' शब्द का 'साहित्य रस' अर्थ में सर्वप्रथम प्रयोग किसने और कब किया ? इस प्रश्न का उत्तर कठिन है। फिर भी काव्यशास्त्रीय चिन्तन का व्यवस्थित रुप सर्वप्रथम भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में दिखाई देता है। भारतीय काव्यशास्त्र के आदि आचार्य भरतमुनि से भी बहुत पहले रस सिध्दान्त का विकास हो चुका था। रस विवेचन के विषय में भरतमुनि का यह सूत्र सुप्रसिध्द है-

'विभावानुभाव-व्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः'

इस भरत सूत्र की कालांतर में अनेकविध विद्वानों ने समय-समय पर अपने दृष्टिकोण से व्याख्याएँ प्रस्तुत की। आचार्य अभिनवगुप्त भरतमुनि के इस सूत्र को रस-लक्षण सूत्र मानते है। अपने सूत्र को विवेचित करते हुए आचार्य भरत लिखते है, 'जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों, औषधियों तथा द्रव्यों के संयोग से (भोज्य) रस की निष्पत्ति होती है, जिस प्रकार गुड़ादि द्रव्यों, व्यंजनों और औषधियों से 'षाडवादि' रस बनते है; उसी प्रकार विविध भावों से संयुक्त होकर स्थायी भाव भी (नाट्य) 'रस' रुप को प्राप्त होते हैं।'[२] भरत के इस विचार की समीक्षा करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भरत का रस-विषयक दृष्टिकोन वस्तुपरख है।

भरत का रस विषयक वस्तुपरख दृष्टिकोन परवर्ती अनेक आचार्यों को मान्य नही हुआ। इसके कारण रस का मूल रुप परिवर्तित हो गया। रस पर आचार्य अभिनवगुप्त ने प्रकाश डाला है। उनके अभिव्यक्तिवाद सिध्दान्त में अनुभूति को प्रमुखता दि है। उनके मतानुसार स्थायी भाव निर्विघ्न अनुभूति की विश्रान्ति दशा में रसनीय होने से रस विभावों अनुभवों तथा व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट स्थायी भाव की निर्विघ्न प्रतीति (अनुभूति) है।

उद्देश्य:-

१. भारतीय काव्यशास्त्र के रस सिध्दान्त का अध्ययन करना।
२. रस सिध्दान्त का विकास, रस की सामग्री, रस का स्वरुप एवं रस के भेद आदि का अध्ययन कराना।
३. रस सिध्दान्त भारतीय काव्यशास्त्र का मेरुदण्ड है। इस पर प्रकाश डालना।
४. रस सिध्दान्त द्वारा रस आस्वादन की प्रक्रिया एवं भूमिका को स्पष्ट करना।
५. रस सिध्दान्त के माध्यम से मानवीय, सांस्कृतिक, सामाजिक, भौतिक, आध्यात्मिक, नीतिवादी और आनंदवादी मूल्यों को प्रतिष्ठित करना।

रस सिध्दान्त का विकास:-

भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में नाटक पर ही अपने चिन्तन को केन्द्रित रखा है। भरत ने अपने सुप्रसिध्द रस-सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्ररसनिष्पत्तिः' द्वारा रस-सिध्दान्त के चिन्तन की आधारभूमि तैयार कर दी थी। रस-सिध्दान्त को पहली सशक्त चुनौती अलंकारवादी आचार्य भामह ने दी। उन्होंने अलंकार को काव्य की आत्मा माना। दण्डी ने भी रस को स्वतन्त्र महत्त्व नहीं प्रदान किया। वामन ने 'रीति को काव्य की आत्मा' के रुप में स्वीकार किया। रुद्रट ने रसों को अलंकारों से मुक्त किया। आनन्दवर्धन ने ध्वनि को काव्य की आत्मा मानकर एक ओर तो अलंकारवाद की बाह्य साधना पर कठोर आघात किया तो दूसरी ओर रस-सिध्दान्त को संतुलन प्रदान किया।

अभिनवगुप्त ने रस-सिध्दान्त की अनेक आधारभूत समस्याओं का मौलिक समाधान प्रस्तुत किया। रस की मनोवैज्ञानिक व्याख्या का श्रेय अभिनवगुप्त को ही दिया जाता है। अभिनवगुप्त के सिध्दान्तों का विरोध महिमभट्ट ने किया। उन्होंने रस को अनुभूति माना है। इसके अनन्तर भोज ने श्रृंगार को ही एक मात्र रस स्वीकार किया है। आगे ध्वनिवादी आचार्य मम्मट ने ध्वनि और रस दोनों के स्वरुप और महत्त्व की सन्तुलित समीक्षा की। विश्वनाथ ने रस को ध्वनि से अधिक महत्त्व प्रदान करते हुए ध्वनि को रस के अन्तर्गत ग्रहण किया। विश्वनाथ की रस-संबंधी आवधारणा का विरोध पण्डितराज जगन्नाथ के द्वारा हुआ। पण्डितराज के बाद रस की काव्यशास्त्रीय परम्परा मौलिकता की तृप्ति से उपराम ले लेती है।

रस-सामग्री:-

भरत का रस सूत्र रस की प्रथम परिभाषा मानी जाती है। भरत ने कहा है कि विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। कारण यही रस तत्त्व है, रस सामग्री है, रस के अंग है।

१. स्थायी भावः-

भरत ने भाव का विश्लेषण करते हुए कहा है-'वाङ्‌गेन सत्वोपेतान् भावयन्ति इति भावः'[३] अर्थात्- अनुभवों के आधार पर वाचिक, आंगिक एवं सात्विक प्रदर्शन द्वारा जो नाटक के अर्थ को प्रभावित करते है, वे भाव है। स्थायी भाव है- रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय, निर्वेद तथा वात्सल्य।

२. विभावः-

रस के आधारभूत कारण को विभाव कहा जाता है। मूलतः स्थायी भाव को उद्दीपित करनेवाले व्यक्ति, भाव अथवा वस्तुएँ विभाव के अंतर्गत आती है। इसके कुछ भेद-उपभेद किए जाते है-

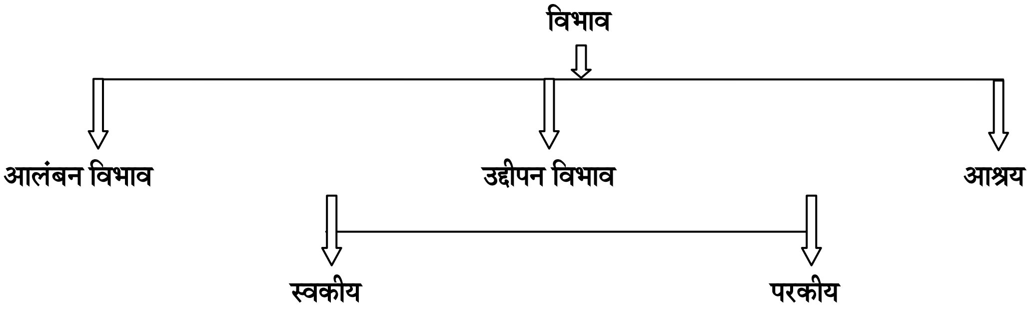

काव्य में चित्रित ऐसा एक व्यक्ति यदि हमारे भीतर दुःख का भाव जगाता है तो वह आलंबन की संज्ञा प्राप्त करता है। चाँदनी रात, सुरम्य उपवन, कोयल, नदी का किनारा नायक-नायिका के स्थायीभाव को जागृत कर सकेगा। इस प्रकार के बाहरी स्थितियों को उद्दीपन विभाव की संज्ञा दी जाती है। अन्य भी उपरोक्त नुसार है।

३. अनुभावः-

अनुभाव रसानुभूति के आन्तरिक कारण है। स्थायी भावों की प्रतीति करानेवाली प्रतिक्रियाओं को अनुभाव कहते है। स्थायीभावों के उदय के बाद जो शारीरिक या मानसिक विकार दिखाई देते है उन्हे अनुभाव कहते है। आचार्य विश्वनाथ ने 'आलंबन उद्दीपन आदि कारणों से उद्बुध्द भावों को प्रकाशित करनेवाले कार्य को अनुभाव कहा है।'[४] जैसे- रति की स्थिति में चेहरे पर मुस्कान तथा आँखों में लाल डोरे, क्रोध की स्थिति में हात-पैर काँपना तथा हृदय धड़कना आदि अनुभाव प्रकट होना स्वाभाविक है। अनुभावों की संख्या आठ मानी जाती है। वह इसप्रकार है- स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, कम्प, स्वरभंग, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलय। इन संयोगात्मक प्रक्रिया से ही रस की अनुभूति हो सकती है।

४. व्यभिचारी भाव या संचारी भावः-

विभाव और अनुभाव आदि की सहायता से उत्पन्न हुए स्थायी भावों की पुष्टि करने वाले सहकारी भाव व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। ये भाव रस विशेष के साथ बँधे न रहकर भिन्न-भिन्न रसों के सहयोगी के रुप में प्रकट होते है। रसों के साथ अपने आप संचरण करने के कारण इन्हें संचारीभाव भी कहा जाता है। इन भावों की संख्या ३३ स्वीकार की गयी है। ये है-निवेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दीनता, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, क्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विबोध, अवमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क।

रस का स्वरुपः-

आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में रस के सम्पूर्ण स्वरुपगत वैशिष्ट्य को निम्नलिखित रुप में दिया है-

"सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः ।
वेद्यान्तर-स्पर्श-शुन्यो ब्रह्मास्वाद-सहोदरः ।।
लोकोत्तरचमत्कारः प्राणाः कैश्चित्प्रममातृभिः ।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ।।"[५]

१. सत्त्वोद्रेकः-

मन की उस स्थिति को सत्त्वोद्रेक कहते हैं जिसमें सत्त्व गुण शेष हो और वे दो गुणों- रजोगुण और तमोगुण से अलग हो। रस के आस्वादन की यह अनिवार्यता है। जब तक हम सांसारिक जीवन से मुक्त होकर रसानुभूति नही करते तब तक रसस्वादन संभव नहीं है।

२. रस की अखंडताः-

इसका तात्पर्य यह है कि रस उस स्थायीभाव का परिष्कृत नाम है, जिसका संयोग विभाव, अनुभाव, संचारी भाव इन तीनों के समन्वित रुप के साथ है, न कि इनमें से किसी एक के साथ। इस स्थिति में किसी एक अंश को दूसरे से अलग नही किया जा सकता। इसीकारण रस अखंड है। अतः रस को अखंड माना गया है।

३. रस- स्वप्रकाश हैः-

जिस प्रकार सूर्य को किसी अन्य प्रकाश की आवश्यकता नही होती उसी प्रकार रस भी स्वयं प्रकाशित होता है। कहने का आशय यह है कि रसानुभूति आत्मचेतना के प्रकाश से प्रकाशित होती है, अर्थात इसमें ऐंद्रिय आनंद का अभाव और चैतन्य में आत्मास्वाद का सद्भाव विद्यमान होता है।

४. रस का अपने अभिन्न रुप में आस्वादनः-

रस को हम जिस प्रकार आस्वादित करते है, उसके अतिरिक्त वह और किसी प्रकार की अनुभूति नहीं है। क्योंकि सहृदय की निजी अनुभूति ही रस रुप में परिणत होती है। इस स्थिति में एक सहृदय की अनुभूति में दूसरे सहृदय की अनुभूति न तो सहायक बनती है और न किसी रुप में प्रभावित ही कर सकती है।

५. रस चिन्मय हैः-

अर्थात रस में चेतनता प्रधान है, न कि रस शुध्द चेतन। रस आत्मा के समान सचेतन और प्राणवान् आनन्द है। वह निद्रा, मद्यपान आदि से उत्पन्न लौकिक आनंदों के समान कालिक आनंद नही।

६. रस का वेद्यांतर स्पर्शशुन्य स्वरुपः-

रस के आस्वादन के समय किसी सांसारिक घटना, प्रसंग अथवा विचार का स्मरण नहीं होता। इस स्थिति में जानी हुई या जानने योग्य सभी प्रकार की वस्तुओं के ज्ञान का विस्मरण हो जाता है इतनी तन्मयता आ जाती है कि सहृदय को आत्मसत्ता भी रसमय प्रतीत होने लगती है। इस बिंदू पर इतनी तन्मयता आ जाती है कि विश्व के किसी भी पदार्थ की हमें प्रतीति नहीं हो पाती। एक अर्थ में इसे देश, काल, लिंग, वय इत्यादि बंधनों से विमुक्त अपने अस्तित्व का रसानुभूति में विलयन ही कहा जाएगा।

७. रस ब्रह्मास्वाद सहोदर हैः-

विश्वनाथ ने रसानन्द को ब्रह्मास्वाद न कहकर उसका सहोदर कहा है। रस का आनंद ब्रह्मास्वाद के समान अवश्य है। ब्रह्मास्वाद में जिसप्रकार अलौकिक आनंद की अनुभूति हुआ करती है, कुछ उसीप्रकार रसानुभूति भी अलौकिक आनंद प्रदान करती है।

८. रस लोकोत्तर चमत्कार प्राण होता हैः-

लोकोत्तर चमत्कार का अर्थ है- विस्मय, अर्थात् चित्त का विस्तार। चमत्कार चित्त का विकास जन्य आनंद है। कोई भी सुन्दर वस्तु केवल आकर्षण की भावना उत्पन्न नहीं करती, बल्कि मन में विस्मय को भी जन्म देती है। दूसरे शब्दों में सुन्दर वस्तु को देख कर हृदय आनंद और विस्मय दोनों का अनुभव करता है।

९. रस आनन्दमयी चेतना है :-

आनन्द के विषय में मनोविज्ञान में दो प्रवाह है। एक जीवन की सभी क्रियाएँ आनन्दोन्मुख है। दूसरा ये क्रियाएँ अपने से भिन्न किसी अन्य लक्ष्य को अर्थान्वित नहीं करतीं। इस संबंध में डॉ. नगेन्द्र का मत हैं कि 'काव्य से प्राप्त संवेदन प्रत्यक्ष न होकर सूक्ष्म विम्ब-रुप होते है। एक तो किसी कारण उनकी कटुता अत्यन्त क्षीण हो जाती है, दूसरे वे कवि द्वारा भावित होते है, इसलिए उनमें अनिवार्यतः सामंजस्य स्थापित हो जाता है। क्योंकि काव्य के भावन का अर्थ ही अव्यवस्था में व्यवस्था स्थापित करना है और अव्यवस्था में व्यवस्था ही आनन्द है।'[६] इस प्रकार जीवन के कटु अनुभव भी काव्य में, अपने तत्त्व में समाविष्ट होकर आनन्द प्रदान करते है। अतएव रस चेतना आनन्दमय होती है।

रस के भेद :-

भारतीय काव्यशास्त्र में भरतमुनि ने ८ रसों का उल्लेख किया है, तो उद्‌भट का शान्त रस मिलाकर रस संख्या ९ मानी जाती है। आगे चलकर यह संख्या बढ़कर २४ तक बढ़ गई जाती है। हम यहाँ नौ रसों का परिचय देखना है। श्रृंगार, हास्य रस, करुण रस, रौद्र रस, वीर रस, भयानक रस, वीभत्स रस, अद्‌भुत रस और शान्त रस।

१. श्रृंगार :-

स्त्री और पुरुष के एक दूसरे के प्रति प्रेम संबंधी का चित्रण श्रृंगार रस के अंतर्गत होता है। इसके दो भेद संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार है। श्रृंगार रस को रसराज कहाँ जाता है। संयोग एवं वियोग श्रृंगार में श्रृंगार का स्थायी भाव रति ही होता है।

२. हास्य रसः-

किसी के असामान्य एवं विकृत हाव-भाव, वेशभुषा, बातचित, वस्तु अथवा स्थिति का ऐसा चित्रण जिससे हास्य निर्माण होता है, उसे हास्य रस कहा जाता है।

उदाहरण- '**प्रिये तुम्हारे चेहरे पर चेचक के दाग जो होते है।**
चाँद तो तुम हो ही, तारे भी साथ होते।'

३. करुण रसः-

किसी प्रकार की अप्रिय स्थिति, किसी प्रिय व्यक्ति अथवा वस्तु के नाश से हृदय में उत्पन्न शोक का चित्रण करुण रस है। करुण रस का स्थायी भाव शोक है।

४. रौद्र रसः-

शत्रु के पक्षवाले या किसी अवांछित व्यक्ति अथवा वस्तु द्वारा किए गए असाधारण अपराध, अपमान के कारण उत्पन्न क्रोध से रौद्ररस का संचार होता है। रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध होता है तथा देवता रुद्र व रंग लाल होता है।

५. वीर रसः-

शत्रु को सामने पाकर, उसकी ललकार, देश, जाति, धर्म आदि की दुर्दशा से किसी पात्र के हृदय में उनको मिटाने के लिए अपना पुरुषार्थ आदि दिखाने का उत्साह का वर्णन वीर रस कहलाता है। इस रस का स्थायी भाव उत्साह होता है।

६. भयानक रसः-

किसी डरावने भयानक प्राणी आदि के देखने, घोर अपराध के कारण दंड पाने की कल्पना आदि से मन की व्याकुलता के वर्णन में भयानक रस होता है। किसी ऐसे वर्णन से भय निर्माण होता है उसे भयानक रस कहा जाता है। इसका स्थायी भाव भय है।

७. वीभत्स रसः-

किसी श्मशान, युध्द स्थल, दुर्गधींत जगह का चित्रण देखकर या सुनकर जो भाव उत्पन्न होता है उसे वीभत्स रस कहा जाता है। इस रस का स्थायी भाव घृणा है।

८. अद्‌भूत रसः-

किसी आश्चर्यजनक दृश्य, वस्तु अथवा व्यक्ति का वर्णन देखकर विस्मय का भाव निर्माण होता है उसे अद्‌भूत रस कहा जाता है। इसका स्थायी भाव विस्मय या आश्चर्य है।

९. शान्त रसः-

संसार की नाशमानता, दु:ख तथा असत्यता आदि के यथार्थबोध से मन में जब संसार की सभी भौतिक वस्तुओं से मन उठकर विरक्त, निस्पृह और शान्त हो जाता है ता इसतरह की स्थिति को शान्त रस की स्थिति कहते है। इस स्थिति में संसार की क्षणभंगुरता, लघुता का ज्ञान हो जाता है। इसका स्थायी भाव निर्वेद या वैराग्य है।

निष्कर्ष :-

१. वास्तव एवं शाश्वत चिंतन से यह स्पष्ट होता है कि भाषा-शैली, रुप-आकार, साँचे और सामग्री तो हर युग में परिवर्तनीय होते है; किंतु संवेदनाएँ और भावानुभूतियाँ साहित्य में यथावत बनी रहती है।
२. रस सिध्दान्त वर्तमान समय में प्रांसगिक एवं सार्वकालीक है यह स्पष्ट होता है।
३. साहित्य समीक्षा में काव्यशास्त्र के रस सिध्दान्त को मूल मानदण्ड मानकर चलना होगा। जिसके कारण काव्य की उदात्त रसानुभूति सम्भव होती है।
४. रस सिध्दान्त ने भारतीय काव्यशास्त्र को नये प्रतिमान एवं मानदण्ड दिए है यह भी स्पष्ट होता है।
५. रस सिध्दान्त मानवी मन के भावबोध को पुरी तरह से उद्‌घाटित करता है ऐसा दिखाई देता है।
६. सर्वश्रेष्ठ कविता की सिध्दि रसांगो के औचित्यपूर्ण विन्यास से ही सम्भव है। यह रस सिध्दान्त के माध्यम से हमारे सामने आता है।

संदर्भ सूचिः-

०१. डॉ. सभापति मिश्र : भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन, पृष्ठ- १५, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, २००७ ई.
०२. सं. डॉ. मधु खराटे : काव्यशास्त्र : विविध आयाम, पृष्ठ- १६७, विद्या प्रकाशन कानपुर, २०१० ई.
०३. डॉ. सभापति मिश्र : भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन, पृष्ठ- ७३, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, २००७ ई.
०४. डॉ. नारायण शर्मा : साहित्यशास्त्र, पृष्ठ- ५९, छाया पब्लिशिंग हाऊस औरंगाबाद, १९९८ ई.
०५. डॉ. सभापति मिश्र : भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन, पृष्ठ- ७४, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, २००७ ई.
०६. डॉ. सभापति मिश्र : भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य-चिन्तन, पृष्ठ- ७६, जयभारती प्रकाशन इलाहाबाद, २००७ ई.
०७. डॉ. माधव सोनटक्के : साहित्यशास्त्र, छाया पब्लिसिंग हाऊस, औरंगाबाद.
०८. डॉ. रामचंद्र तिवारी : भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र की रुपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.
०९. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त : भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिध्दान्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.
१०. निशा अग्रवाल : भारतीय काव्यशास्त्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.